दिल्ली
दिसम्बर ४, २००७

सन्देश संख्या १२७

चैतन्य का कर्म और चित्तवृत्ति का अकर्म

चित्तवृत्ति की गतिविधि में कर्त्ता और कर्म के मध्य तथा विचार और उसके कार्यान्वयन के मध्य हमेशा ही कालिक अन्तराल होता है । गतिविधि पूर्व–विचारित तरीके से पूरी होती है । गतिविधि का संबंध बाहरी दुनिया से होता है जहाँ विभेदकारी चित्त ''मैं'' संग्रह में लिप्त होता है । यह बाहरी दुनिया में चाहने–पाने की आपाधापी है । इसलिए संसार के इस बहिर्मुखी आयाम में काल के अन्तराल का होना आवश्यक है । इसमें प्रयोजन एवं दिशा भी निश्चित रूपेण संबंद्ध होते हैं । यहाँ चाहने की प्रक्रिया चाहनेवाला और इच्छित वस्तु के विभाजन के मध्य होता है ।

चैतन्य के कार्य में, क्षण प्रतिक्षण केवल गहरा बोध होता है और बोधक तथा बोध्य के मध्य कोई समयान्तराल नहीं होता । यहाँ दर्शन की क्रिया स्वतः घटित होती है । अन्तर्दुनिया में, मिथ्या विभाजन ''मैं'' का अन्तर्दर्शन और उससे मुक्ति ही महत्वपूर्ण है । इस विभेदकारी ''मैं'' से मुक्त होकर शून्य हो जाना – अन्तर्मुखी आयाम की प्रक्रिया है । ''मैं'' से मुक्ति में समय बिल्कुल निरर्थक है । काल्पनिक छवि जिसे ''मैं'' कहा जाता है, की समाप्ति से ही चैतन्य का उदय होता है जो कि वास्तविक है । ''मैं'' से मुक्ति के लिए या ''मैं'' से मुक्ति की प्रविधि के रूप में यदि समय बीच में आ जाता है तब ''मैं'' पुनः प्रभावी हो जाता है और चैतन्य के आविर्भाव एवं उसके कार्य में बाधक बन जाता है ।

''मैं'' की समझदारी ही ''मैं'' से मुक्ति है और यही चैतन्य का उदय है। यह कालविहीन झरना है। काल से यह मुक्ति ही सबसे बड़ा प्रबोध है ।

।। चैतन्य के कार्य की जय ।।